International Journal of Information Movement *Vol. 9 Issue IV* *(August 2024)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages 11-14**

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकताः एक विचार

दीक्षा
जूनियर रिसर्च फेलो, पी.एच.डी
हिन्दी विभाग
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र
Email-id: drdiksha555@gmail.com

सारांश . पृथ्वीराज रासो को हिन्दी साहित्य का पहला महाकाव्य माना जाता है, जिसकी रचना चंदबरदाई ने की थी। यह महाकाव्य मुख्य रूप से पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र पर केंद्रित है, जिसमें उनके युद्धों का वीरता और श्रृंगार रस के साथ सजीव वर्णन किया गया है। यद्यपि यह कृति अत्यधिक प्रतिष्ठित है, परंतु इसकी प्रामाणिकता पर लंबे समय से विवाद चला आ रहा है। प्रारंभ में इसे प्रामाणिक माना जाता था, लेकिन जयानक कवि द्वारा रचित "पृथ्वीराज विजय" की खोज के बाद इसकी प्रामाणिकता को चुनौती दी गई। 'रासो' शब्द संस्कृत की 'रास' धातु से बना है, जो समूह नृत्य और गीत से संबंधित रचनाओं के लिए प्रयोग किया जाता है। विद्वानों का एक वर्ग इसे अप्रमाणिक मानता है, जो घटनाओं, कालक्रम, और भाषा की असंगतियों के आधार पर इसे सिद्ध करता है, जबकि दूसरा वर्ग इसे प्रामाणिक मानता है और मानता है कि इसमें बाद में कुछ अंश जोड़े गए हैं। यह विवाद आज भी इस महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति की समझ को प्रभावित करता है।

मुख्य शब्द . पृथ्वीराज रासो, चंदबरदाई, हिन्दी साहित्य, महाकाव्य, प्रामाणिकता विवाद, जयानक, पृथ्वीराज चौहान, रासो, मध्यकालीन भारतीय साहित्य।

1.0 प्रस्तावना

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का सर्वप्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना चंदबरदाई द्वारा की गई है। जिसमें पृथ्वीराज चौहान के जीवन और चरित्र का वर्णन किया गया है। पृथ्वीराज रासो वीर एवं श्रृंगार रस प्रधान रचना है जिसमें पृथ्वीराज के युद्धों का सजीव एंव प्रभावशाली वर्णन किया गया है। पृथ्वीराज रासो एक सर्वश्रेष्ठ रचना है, जिसकी बराबरी में अन्य कोई ग्रंथ नहीं है।

यह भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों दृष्टियों से अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता – अप्रमाणिकता के संबंध में काफ़ी लंबा विवाद चला आ रहा है। प्रारंभ में यह ग्रंथ प्रामाणिक रचना माम जाता था, परंतु

अब अधिकांश विदवान इसे अप्रमाणिक मानते हैं। कर्नल टॉड ने इसके साहित्यिक सौंदर्य पर मुग्ध होकर इसका अंग्रेजी अनुवाद करना आरंभ किया था तथा 'रायल एशियाटिक सोसाइटी" बंगाल ने इसका प्रकाशन आरंभ किया था। ग्रंथ का कुंछ भाग छप चुका था कि कश्मीर में जयानक कवि द्वारा रचित 'पृथ्वीराज – विजय' पर एक खंडित प्रति प्राप्त हुई, फलस्वरूप पृथ्वीराज रासो को अप्रमाणिक घोषित कर दिया गया।

यहीं से इस ग्रंथ की प्रामाणिकता अप्रमाणिकता के संबंध में विवाद शुरू हो गया । रासो की प्रामाणिकता पर विचार करने से पहले हम रासो शब्द की उत्पत्ति पर दृष्टि डालते हैं, रासो शब्द संस्कृत की रास धातु से बना है। हिन्दी साहित्य में 'रास' या 'रासक' का अर्थ 'लास्य' से लिया गया है – इसका अर्थ है कि 'गीतयुक्त मंडलाकार समूह नृत्य परंपरा' अर्थात् इसी अर्थ भेद के आधार पर गीत नृत्यपरक रचनाएँ 'रास' नाम से जानी जाती है। ''रास, रासउ, रासु, रासहँ और रासो आदि शब्द पर्यायवाची है।' रासो ग्रंथ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में दो दलों की स्थापना हुई। पहला रासो को अप्रमाणिक मानने वाला वर्ग तथा दूसरा रासो को प्रामाणिक मानने वाला वर्ग

रासो को अप्रमाणिक मानने वाले विद्वानों में श्री मुरारीदीन, कविराज श्यामल दास, डॉ. गौरीशंकर हीराचंद, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि प्रमुख हैं। इन्होंने घटना, काल और भाषा के आधार पर रासो को अप्रमाणिक सिद्ध किया है। 'कविराज श्यामलदास ने चन्द एवम् उसकी रचना दोनों को अप्रमाणिक सिद्ध करते हुए कहा है कि 'पृथ्वीराज रासो' कोणटिका या बेलंदा के चौहान आश्रित किसी भाट की रचना है। उनके अनुसार 'रासा' न तो चन्दबरदाई द्वारा लिखित है और न ही पृथ्वीराज के इसकी रचना हुई। डा. बुलर के मतानुसार, 'पृथ्वीराज रासो' जाली ग्रंथ हैं। उनके मत में सन् 1815 में कश्मीर में प्राप्त 'पृथ्वीराज विजय'एक प्रामाणिक ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अनुसार पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर ने चेदिराज की कन्या कपूर देवी से विवाह किया ।

आचार्य शुक्ल ने इस ग्रंथ की प्रामाणिकता के विरोध में कहा है– ''माना की 'रासो' इतिहास नहीं है, काव्य ग्रंथ ही है, पर जयानक का पृथ्वीराज विजय भी तो काव्य ग्रंथ ही है, फिर उसमें क्यों घटनाएँ, नाम ठीक–ठीक है। .... अधिक संभव जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र या उसके भाई दोनों में से किसी एक के वंशज के यहाँ चंद नाम का कोई भट्ट कवि रहा हो और उसी ने पृथ्वीराज की वीरता का वर्णन किया हो और पीछे 'भट्ट – भगन्त' तैयार किया गया हो। भाषा की कसौटी पर कसने पर और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं हैं।''

काल वैषम्य रासो की प्रामाणिकता में सबसे बड़ी बाधा है। ऐसा माना जाता है कि रासो में दिए गए संवत एवम् इतिहास में तालमेल नहीं बैठता, अतः इस रचना को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।'' यह एक साहित्यिक रचना है कोई इतिहास ग्रंथ नहीं। अतः साहित्यिक रचना व इतिहास में मूल भेद ही कल्पना का समावेश होता है। अतः इस रचना को इतिहास का चश्मा लगा कर नहीं देखा जाना चाहिए।'' रासो में अरबी–फारसी शब्द भी उसकी प्रामाणिकता के विषय में

सन्देह पैदा करते हैं, क्योंकि चन्द बरदाई के समय में इन शब्दों का प्रयोग नहीं होता था। इस भाषा के अनुसार रासो की रचना 16वीं शताब्दी सिद्ध होती है। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी धीरेन्द्र वर्मा ने भी रासो की भाषा को 16वीं शताब्दी स्वीकार की है। इस ग्रंथ को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों के मत है कि पृथ्वीराज रासो जाली ग्रंथ नहीं है, अपितु प्रामाणिक रचना है। इसमें कुछ प्रक्षिप्त अंश जुङ गए है जो स्वाभाविक है। 'हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि इन पद्यों के प्रकाशन के बाद अब इस विषय में किसी को संदेह नहीं रहा कि चन्दबरदाई नामक कवि पृथ्वीराज के दरबार में नहीं थे।'

दूसरा वर्ग रासो को प्रामाणिक मानने वालों में मोहन लाल, विष्णु लाल पाण्ड्या, डॉ. श्यामसुन्दरदास, मिश्र बन्धु, ग्रियर्सन, कर्नल टॉड, गार्सा द तासी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. दशरथ शर्मा आदि नाम उल्लेखनीय है। मोहन लाल विष्णु लाल पाण्ड्या ने पृथ्वीराज रासो की 'प्रथम संरक्षा' नामक निबंध में लिखा है,–''यह महाकाव्य आज तक कवि चन्द का बारहवीं शताब्दी का रचा हुआ एक बड़ा प्रामाणिक ग्रंथ है, जो कि प्राचीन काल से चला आता है, उस पर भी कुछ विद्वानों ने इसे अप्रमाणिक बताने की चेष्टा की है।'' पृथ्वीराज रासो की तिथियों को आनन्द सम्वत के अनुरूप माना जाए तो सभी तिथियाँ इतिहास सम्मत ठहरती हैं। फारसी शब्दों के बाहुल्य पर इसे अकबर बादशाह के समय 1640–1670 के मध्य लिखा गया नहीं स्वीकार किया जाता। डा. श्यामसुन्दरदास के अनुसार यह ग्रंथ प्रामाणिक है। उन्होंने मुनि– जिन विजय जी द्वारा प्राप्त चार रासो विषयक छन्दों को प्रामाणिक माना है। उन का मत है – ''पृथ्वीराज रासो समस्त वीरगाथा काल की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। उस काल की जितनी स्पष्ट झलक इस ग्रंथ में पाई जाती है, उतनी अन्य ग्रंथ में नहीं।'' इतिहास संबंधी भ्रान्तियों के विषय में डा. श्यामसुन्दर दास ने अनेक तर्क दिए है, (1) नागरी प्रचारिणी सभा ने इसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ पट्टे और परवाने प्रकाशित किये थे, उनको झूठा मानने का कोई आधार नहीं है। (2) उनके विचार में इसमें प्रक्षिप्त अंश तो मिल सकते हैं, क्योंकि रामायण जैसे ग्रंथ में जो इतने वर्षो के बाद लिखा गया, प्रक्षिप्त अंश पाए जाते हैं। (3) चन्द ने अपने आश्रयदाता की वीरता का जो अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन किया है, वह स्वाभाविक ही है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने आश्रयदाता के गुणों का बढ़ा–चढ़ा कर ही वर्णन करता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार यह मान लेने में किसी को कोई आपत्ति नहीं है कि रासो एकदम जाली पुस्तक नहीं है। उसमें बहुत अधिक प्रक्षेप होने से उसका रूप विकृत जरूर हो गया है, पर इस विशाल ग्रंथ में सार भी अवश्य है। इस प्रकार द्विवेदी जी को रासो की प्रामाणिकता में तनिक भी संदेह नहीं है।

डॉ. दशरथ शर्मा ने 'रासो' पर खूब काम करके यह निष्कर्ष निकाला है कि 'रासो' का मूल रूप अल्पकाय था, अतः वह प्रामाणिक है। उन्होंने रासो को अप्रामाणिक बताने वाले विद्वानों के मतों का खंडन करते हुए निम्नलिखित तर्क दिये (1) मूल रासो न तो जाली ग्रंथ है न उसकी रचना स. 1600 के आस–पास हुई थी। इधर मिली हुई रासो की लघुतम प्रतियों

के आधार पर घटना, वैषम्य एवं भाषा सम्बन्धी शंकाओं का समाधान हो जाता है। इन प्रतियों में इतिहास विषयक त्रुटिपूर्ण घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है। (2) 'अंगपाल और पृथ्वीराज' के संबंध की अशुद्धि इस प्रति में भी है। शर्मा जी इसका कोई कारण नहीं बता सके हैं। (3) मुनि जिन विजय ने अपने श्पुरातन प्रबन्ध–संग्रह में चन्द कवि को ऐतिहासिक व्यक्ति और पृथ्वीराज चौहान का समसामयिक तथा राजकवि माना है। 'पृथ्वीराज रासो नामक जो ग्रंथ प्राप्त होता है वह कौन से कवि चंद की रचना है यह कहना कठिन है। पृथ्वीराज रासो की भाषा, वर्णनशैली, विषय सामग्री के आधार पर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि चंद नामक कवि राजस्थान निवासी होना चाहिए। चंद कवि की रचना में लगातार क्षेपक अंश मिलते रहे है अतरू उसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा।'' पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर विचार करने वाले विद्वानों का यह विचार तो सर्वसम्मत है कि रासो में क्षेपक या परवर्ती प्रक्षिप्ताश अत्यधिक हैं, किन्तु चंदबरदाई इसका मूल लेखक अवश्य है।

उसका लिखा अंश कितना है इसका निर्णय अभी तक कोई विद्वान नहीं कर सका है। रासो एक विकासशील महाकाव्य है जिसका आदर्श महाभारत है, अतः कुछ ऐसे वर्णन भी इसमें मिलते है, जो अप्रासंगिक है किन्तु ज्ञान का कोष बनाने की स्पृहा से वे इनमें समविष्ट कर दिये गए हैं। जैसे योगियों की साधना, राजनीतिशास्त्र शकुन शास्त्र, अध्यात्म विधा, धर्मशास्त्र आदि । वस्तुतः इन अप्रासांगिक विविध वर्णनों को रखने के पीछे कवि की महत्वाकांक्षा ही एकमात्र कारण है जो उस व्यासमुनि का अनुकरण करने को प्रेरित करती है। इस प्रकार 'रासो' की प्रामाणिकता के संबंध में अनेक विद्वानों में पर्याप्त मत भेद है। इतना तो सत्य है कि रासो की मूल प्रति आज भी उपलब्ध नहीं है। जितनी भी प्रतियाँ आज प्राप्य है, उनमें किसी नं किसी सीमा तक प्रक्षेप मिलते हैं। पर इतना अवश्य है कि 'रासो' नितान्त अप्रमाणिक रचना नहीं है तथा इसके रचयिता होने का श्रेय चन्दबरदाई को प्राप्त है।

2.0 संदर्भ ग्रथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं. – 67
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 30–31
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ – 31
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृष्ठ–56
5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, डॉ. हरीशचन्द्र वर्मा, पृष्ठ – 38
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, स. डॉ. नगेन्द्र, पृ. स. – 68
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, स. डॉ. नगेन्द्र, पृ.स. – 69
8. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह, पृ. 29